International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 9 No.6 July-Aug 2022

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त और हिन्दी का प्रगतिवाद

डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैकुण्ठपुर, कोरिया (छ.ग.)
Corresponding Author- डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय
DOI- 10.5281/zenodo.14506034

सारांश:

हिन्दी साहित्य अनेक विचारधाराओं, कलाओं तथा साहित्य विधाओं का आगार है। इसमें देशी साहित्य भी है और विदेशी साहित्य भी है लेकिन जनमानस ने विदेशी साहित्य को ज्यों का त्यों नहीं अपनाया अपितु उसे देशी रंग में घुलाकर ही अपनाया। हो सकता है जो परिस्थिति आज हमारे यहाँ है वह परिस्थिति किसी देश में हमसे 20–25 वर्ष पूर्व रही हो। उस परिस्थिति के आज हमारे यहाँ आने से उसे हम आयातित परिस्थिति या नकल नहीं कह सकते। हिन्दी के कुछ वाद विशेष यथा छायावाद, प्रगतिवाद आदि पर यह आक्षेप लगते रहते हैं कि ये विदेशी हैं। लेकिन यदि हम इस साहित्य का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि ये विदेशी नहीं बल्कि हमारी अपनी परिस्थितियों से उपजी अभिव्यक्ति है। 'प्रगतिवाद' का उद्भव उस समय हुआ जबकि जनमानस विदेशी शासन के प्रति प्रतिशोध की आग में जल रहा था। यही वह समय था जब रूसी क्रान्ति की सफलता ने पूरे विश्व को हिलाकर रख दिया और देश को आदर्शवादी सांचे में ढालने का प्रयत्न हुआ। 1927 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी स्थापित की गई और 1935 में फासिस्टों के विरोध में ई०एम० फारेस्टर की अध्यक्षता में साम्यवादी लेखकों की बैठक से प्रेरणा ग्रहण करके 1936 में भारत में भी 'प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। ध्यान रहे कि केवल प्रेरणा मात्र ग्रहण की गई बाकी परिस्थितियाँ तो हमारे यहाँ थी हीं। कवि पन्त ने इस विचारधारा को मुखरित करते हुए लिखा, 'इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है, इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। श्रद्धा अवकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण अंदोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्नजड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रुप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ सकता है।''[1] हिन्दी साहित्य ने भी इसी कठोर यथार्थ तथा अपनी मूलगामी पकड़ यानी सामान्य जनता की वैचारिकी को मुखरित किया।

प्रस्तावना:

वस्तुतः किसी भी परिवेश या साहित्य में दो प्रकार की विचारधाराएं किसी न किसी रुप में उपस्थिति रहती है– एक आदर्शवादी और दूसरी भौतिकवादी। चूंकि मार्क्सवाद की कतिपय मूलभूत मान्यताओं पर ही प्रगतिवाद की नींव पड़ी है इसलिए इसका विवेचन आवश्यक है। ऊपर हमने जिन दो विचारधाराओं की चर्चा की है उनमें हीगेल जो कि मार्क्स के पूर्व था आदर्शवादी विचारक था। प्राचीन यूनान में लोग वाद–विवाद के माध्यम से अपनी वैचारिक असंगतियों का निराकरण प्रस्तुत करते थे। उन्हें इस बात में विश्वास था कि द्वन्द्व सत्यान्वेषण का एक प्रमुख साधन है, ये बौद्धिक अन्तर्द्वन्द्व ही इतिहास निर्माण के प्रमुख साधन है। कार्ल मार्क्स भौतिकवादी विचारक था, उसे हीगेल की प्रत्ययवादी मान्यता अमान्य थी। हीगेल की द्वन्दात्मक पद्धति से अपनी द्वन्द्वात्मक पद्धति की भिन्नता सिद्ध करते हुए मार्क्स ने लिखा है कि ''मेरी द्वन्द्वात्मक पद्धति हीगेल से भिन्न ही नहीं अपितु उसकी सर्वथा विरोधी है। हीगेल ने मानव जीवन की प्रक्रिया अर्थात् उसके चिन्तन को प्रत्यय के नाम से अभिहित किया है और इसे उसने स्वतंत्र विषय घोषित किया है। पर द्रष्टव्य यह है कि प्रत्यय भी यथार्थ विश्व की सृष्टि होने के कारण भौतिकता से मुक्त नहीं है। मैं मानव–मस्तिष्क द्वारा प्रतिच्छायित भौतिक विश्व को अपने आदर्श रूप में ग्रहण करके इसी को अपने चिन्तन का विषय बनाता हूँ।''[2]

द्वन्द्वात्क भौतिक की जीवन और जगत के विषय में निश्चित मान्यताएँ हैं। वैश्विक विकास को वह कार्यकारण की परस्पर सम्बद्धता और अन्योन्याश्रयता का प्रतिफलन मानता है। इसका विश्वास है कि इस कार्यकारण सम्बन्ध में ऐसी भी अवस्था आती है जब कार्य ही कारण बन जाता है और कारण कार्य। इसे जल और बादल के उदाहरण से भली–भाँति समझा जा सकता है। इसी प्रकार की प्रक्रियाएं सामाजिक जीवन में भी उत्पत्ति और मांग के रूप में एक दूसरे को प्रभावित करती रहती है।

"Material world is not only developing, but also a connected integral whole. All its objects and Phenomena develop not of themselvesm, not in isolation, but in severable connection or unity with objects and Phenomena. Each of them acts on other

objects and Phenomena and itself is subjected to reciprocal influence."[3]

मार्क्सीय द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विश्व का सतत परिवर्तनशील और विकासशील अवस्था में मूल्यांकन करता है। विकास की प्रक्रिया अनन्त तथा गतिशील है। एक वस्तु के स्थान पर दूसरी नई वस्तु की अवतारण हुआ करती है और यह प्रक्रिया अबाध गति से निरन्तर चला करती

"The new is that which is progressive, improved and viable, which constantly grows and develops-"[4]

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद नियम के आदर्शवादी एवं भाग्यवादी दृष्टिकोण का विरोधी है। यह नियमों के प्रति अन्धश्रद्धा, मानव की बौद्धिकता के प्रति अविश्वास एवं मानवीय नियमों के अभिज्ञान के विरुद्ध कही गई बातों को हेय दृष्टि से देखता है।

स्टालिन के अनुसार द्वन्द्वात्मक विकास सिद्धान्त हमें यह बताता है कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु और कार्य में अन्तर्द्वन्द्व एवं संघर्ष की स्थिति होती है। इस प्रकार द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया इस बात की प्रमाण है कि निम्नस्तर से उच्च स्तर तक का विकास समन्वय का प्रतिफलन न होकर वस्तुओं में निहित अन्तर्द्वन्द्व का परिणाम है।

द्वन्द्व की स्थिति के लिए किसी वस्तु की एकता की उपस्थिति आवश्यक है। जैसे एक चुम्बक की उपस्थिति में ही उसमें निहित दो विरोधी ध्रुवों की कल्पना सम्भावित है। चुम्बक का यही आकार एकता की संज्ञा से अभिहित किया जाता है तथा इसमें निहित विरोधी ध्रुवों की उपस्थिति को द्वन्द्व की संज्ञा दी जाती है। प्रश्न उठता है कि एकता का नया अस्तित्व और द्वन्द्व की क्या विशेषता है। इसके उत्तर में लेनिन ने कहा है कि ''द्वन्द्वात्मक एकता प्रातिबन्धिक, अस्थायी, नश्वर और सापेक्ष होती है। एकता निहित द्वन्द्व इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।''[5] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि द्वन्द्वात्मक विकास के लिए एकता की महती आवश्यकता है।

मार्क्सवादी विचारको ने द्वन्द्व की विविधता पर भी विचार किया है। इनके अनुसार मुख्यतः द्वन्द्व दो प्रकार का होता है– बाह्य एवं आभ्यान्तरिक तथा प्रतिकूल एवं अनुकूल। वस्तु में बाह्य एवं आभ्यान्तरिक दोनों ही प्रकार के द्वन्द्व पाये जाते हैं। ''किसी पदार्थ विशेष में निहित विरोध के द्वन्द्व को आन्तरिक द्वन्द्व और वातावरण विशेष के साथ इसके द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध को बाह्य द्वन्द्व''[6] की संज्ञा दी जाती है। प्रतिकूल द्वन्द्वों की स्थिति ऐसे समाज में पाई जाती है जिनके स्वार्थों में भयंकर विरोध होता है। उदाहरण स्वरुप पूँजीवादी व्यवस्था के बुर्जुआ ओर सर्वहारा वर्ग को लिया जा सकता है। इनमें सामंजस्य होना दुष्कर है। अनुकूल द्वन्द्वों की स्थिति ऐसे वर्गों एवं सामाजिक समुदायों में देखी जा सकता है जिनके प्रमुख स्वार्थों में विरोध नहीं है। ऐसे द्वन्द्वों की परिसमाप्ति के लिए क्रान्ति की जरुरत नहीं होती।

मार्क्स की द्वन्द्वात्मक पद्धति का काफी प्रभाव हिन्दी में प्रगतिवादी आंदोलन पर पड़ा है पूरा का पूरा नहीं परिस्थितिवश जिसकी आवश्यकता थी वही प्रभाव। जैसे कि अन्धश्रद्धा का त्याग, आदर्शवादी और भाग्यवादी दृष्टिकोण का नकार, विश्व की गतिशीलता तथा विकासशीलता में द्वन्द्व की अनिवार्यता आदि। हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों और लेखकों में हमें उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती है। इन लेखकों व कवियों का पूरा का पूरा साहित्य यथार्थ की मजबूत जमीन पर खड़ा है और परम्परागत मान्यताओं और आदर्शवादी धारणा का पुरजोर विरोध करता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का मान्य प्रभाव हमारे प्रगतिशील साहित्य पर पड़ा है।

सन्दर्भ :

1. डॉ० उपाध्याय विश्वनम्भरनाथ, आधुनिक हिन्दी कविता, प्रकाशन वर्ष 1962, पृ० 345 से उद्धृत
2. Karl Marx and F. Engels, Selected Works, p. 413
3. V- Afanasyev, Marxist Philosophy, p. 93
4. Ibid, p. 91
5. Gustav A. Welter, Dialectical Materialism, 1958, p. 340
6. V. Afanasyev, op-cit., p. 102.